मछुआरा समाज की स्त्रियों का संघर्ष

('रह गईं दिशाएँ इसी पार' के विशेष संदर्भ में)

मनीषा देवी
पी-एच. डी. हिंदी साहित्य
अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय
manishay805@gmailcom

निषाद समाज का वजूद प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में विद्यमान रहा है। यह समाज काफी शांतिप्रिय भी रहा है। भारतीय सामाजिक संरचना की निर्मिति अनेक संघर्षों, युद्धों, आर्य- अनार्य संघर्षों एवं कबीलाई युद्धों से क्रमशः विकसित हुआ है। इस समाज का इतिहास लेखन न होने का कारण इनके वंशजों का इतिहास निर्मित नहीं हो पाया, जबकि इनका एक लंबा संघर्ष व इतिहास रहा है।

मछुआरा समाज को भारत में कई नामों से पुकारा जाता है जैसे माझी, केवट, निषाद, बिन्द आदि प्रमुख हैं। इनमें बिंदों की उत्पत्ति विंध्य पर्वत से बताई जाती है। विंध्य पर्वत के कारण ही इनका यह नाम संभवतः पड़ा है, ऐसी लोगों की मान्यता है। उत्तर प्रदेश में बिन्द समाज के लोग अपने पारंपरिक पेशे से जुड़े हुए हैं। मछली पालन करना, मछली पकड़ना और उसे बेचना ही इनका कार्य रहा है। यह इनका पारंपरिक पेशा रहा है। समुद्र के किनारों पर भी जो मछुआरे पाये जाते हैं। उनका तो मछली पकड़ना एक व्यापक व्यवसाय बन चुका है लेकिन आज भूमंडलीकरण के दौर में उनका यह पारंपरिक पेशा छीनता चला जा रहा है, क्योंकि आज समुद्री तटों पर पूँजीपतियों का कब्जा होने लगा है।

इन समस्याओं को लेकर हिन्दी में कई महत्वपूर्ण उपन्यासों का सृजन किया गया है। वास्तव में इतिहास लेखन या उपन्यास लेखन का यह एक सबाल्टर्न वादी नजरिया है। जिसे वंचित वर्ग से आने वाले अधिकांश उपन्यासकारों ने अपनाया है जिनकी चिंता के केंद्र में एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि हमारा इतिहास क्यों नहीं लिखा गया। 'रह गईं दिशाएं इसी पार' कथाकार संजीव का लिखा गया अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। मूलतः यह उपन्यास विज्ञान कथा और पूंजीवाद पर आधारित है। लेकिन इसके माध्यम से कथाकार ने यह दिखाया है कि आज पूंजीवादी युग में निषाद समाज और उनके घरों की स्त्रियाँ कैसे संघर्ष

करती हैं। वंचित वर्ग और मछुआरों का जनजीवन आज के उत्तर पूंजीवादी युग में किस तरह से प्रभावित हो रहा है, उपन्यास इसका यथार्थ प्रस्तुत करता है।

इस उपन्यास में पूंजीपति 'विस्नु विजारिया' हजारों मील के समुद्र तट को खरीद लेता है और अपना मछली मांस का व्यापार देश- विदेश तक फैलाता है। समुद्र तट के सभी मछुआरों को पैसा देकर वह अपनी तरफ मिला लेता है। जब कोई भी उसका विरोध नहीं करता है तब 'बेला' नाम की एक बहादुर मछेरन उसके मछली मारने वाले जहाजों को रुकवा देती है। आज के उत्तर आधुनिक तथा पूंजीवाद के दौर में विस्नू बिजारिया जैसे लोग जो उपन्यास में एक पूंजीपति के रूप में आते हैं, संसार के अधिकतम संसाधनों पर कब्जा किए हुए हैं। इनका विरोध करने वाला ही आज कुचला जाता है। ऐसे पूँजीपतियों का सरकार से गहरा ताल- मेल और संबंध बना होता है। विस्नू बिजारिया जैसे पूँजीपतियों के माध्यम से कथाकार ने आज के समाज में हो रहे अमानवीय कृत्यों को दिखाने की कोशिश की है, जिसमें आज का मध्यवर्ग और निम्नवर्ग पिस रहे हैं।

उपन्यास के माध्यम से कथाकार ने समुद्र के तटीय क्षेत्रों में हो रहे पूँजीपतियों और क्षेत्रीय मछुआरों के संघर्ष को जीवंतता प्रदान की है। मजदूरों के संत्रास, भटकाव, बेरोजगारी तथा उससे उपजी उन तमाम समस्याओं को कथाकार ने मछेरन- 'बेला', तेलम्मा और उसके पति नागप्पा के माध्यम से दिखाया है, जो आज के मजदूरों के साथ घटित हो रहा है। हर जगह पूँजीपतियों का कब्जा होने से अन्याय, शोषण और ज्यादती की घटनाएँ हर रोज घटित हो रही हैं। कथाकार ने ऐसे दमित और शोषित लोगों के प्रति एक गहरी संवेदना व्यक्त की है जो उपन्यास में स्पष्टता के साथ दिखाई देता है। उपन्यास में कथाकार ने एक तरफ भोग- विलास और ऐय्याशी में डूबे हुए पूंजीपति वर्ग को दिखाया है और दूसरी तरफ स्वातंत्र्योत्तर भारत में देश के उन मजदूरों तथा गरीबों, लड़कियों, स्त्रियों, के दर्द को भी दिखाया है। जो अपने घर से भागकर हजार रुपये में मजदूरी करती हैं और निर्दयतापूर्वक सताई जाती हैं। इनके शोषण के प्रमुख कारणों की तरफ कथाकार ने संकेत किया है। अशिक्षा और परिवार के दमघोंटू तथा कलहपूर्ण माहौल के कारण ये मजदूर घर छोडकर भाग जाते हैं। बहुफलकीय इस उपन्यास में समाज के बिखरे दर्द को कथाकार ने एक मानवीय संवेदना में पिरोने की कोशिश की है।

समाज को बेहतर बनाने वाले ईश्वर और गरीब मजदूरों की लड़ाई लड़ने वाले मार्क्स और उसके काल्पनिक समाजवाद को, समान हक पर आधारित समानता को कथाकार खारिज करते हुए दिखाई देता है। समाज को बेहतर बनाने में सिर्फ साइंस और सोशल साइंस का महानतम योगदान माना जा सकता है। कथाकार के शब्दों में –"इसका उपाय सिर्फ साइंस और सोशल साइंस के पास है, जिसने कहारों को पानी और पालकी ढोने से, भंगियों को मैला साफ करने से मुक्त की या। सब तो विज्ञान ही कर रहा है।"[1]

'बेला' का संघर्ष एक बहादुर लड़की का संघर्ष है जो खुलकर बीजरिया के लोगों से लड़ती है भले ही वो कम संसाधनों की वजह से लड़ नहीं पाती है फिर भी उसकी हिम्मत को दाद देनी पड़ेगी। सागर के

तटों पर सदियों से मछुआरों का कब्जा रहा है। मछली मारना और उसे बाजार में बेचना ही उनकी खेती है। रोजी रोटी के इस पारंपरिक संसाधनों के छिन जाने से अधिकतर लोग बेरोजगार हो जाते हैं। अनपढ़ अशिक्षित और मछुआरों के कोई मजबूत संगठन न होने के कारण वे इन पूँजीपतियों से लड़ नहीं पाते हैं। बिजारिया जैसे लोग समुद्र के समुद्र ही खरीद लेते हैं, खुद बीजारिया लगभग आठ हजार किलोमीटर के तट को खरीद लिया है- "आठ हजार इकतालीस कि.मी. समुद्री तट है हमारा, सिर्फ आंध्र में ही 941 किलोमीटर। सारी लड़ाई इस तट पर कब्जे को लेकर है। उनके पास ट्रालर्स, मेकनाइज्ड, बोट्स और आधुनिक उपकरण हैं, लैंडिंग और हार्बर केन्द्रों पर उन्हीं के बिचौलिये हैं वे संगठित भी हैं, सामर्थ्यवान भी। हमारे पास कुछ नहीं। सरकार और इसके अफसर भी उन्हीं का पक्ष लेते हैं।"[2] 'बेला' के इस कथन में मछुआरों का संघर्ष दिखाई देता है।

समुद्री मानकों का अतिक्रमण करते हुये वे तट तक आकार यहाँ तक की मछलियों को मार ले जाते हैं। इसके साथ-साथ तटों पर रहने वाली लड़कियों के साथ ज़ोर जबरन किया जाता है। - "वे 12 समुद्री मील का कानून तोड़कर दो दो मील से भी ज्यादा अंदर घुस कर मछलियाँ हड़प ले जाते हैं जो देशी और अंतरराष्ट्रीय श्रमिक कल्याण नियमों का घोर उल्लंघन है। मछलियाँ तो मछलियाँ, उनके ट्रालरों और प्रोसेसिंग सेंटरों पर भी हम मछुआरों का तरह तरह से शोषण होता आया है।"[3]

बड़ी बड़ी समुद्री जलयानों से अब मछली मारने का कार्य होता है। टन की टन मछलियों की सप्लाई होती है। विरोध करने वालों पर गोलियां तक चलवा दी गयी। लगभग तीस मछुआरों की मृत्यु भी हो जाती है जिसका यथार्थ उपन्यास में दिखाई देता है। भारत के समुद्री तटों पर मछली मारने का कार्य सदियों से होता आया है लेकिन यह कार्य समुद्र के तटों तक ही सीमित था समुद्र के बीच में जाकर मछली मारने का कार्य तो भारतीयों को डचो ने सिखाया है -"पक्के मछुआरे थे डच। उन्होंने सूती जाल की जगह लोहे के जाल का उपयोग करना और तटों पर ही मछली मारने वाले मछुआरों को गहरे समुद्र में मछली मारना सिखाया"[4]

आज इस व्यापक पैमाने पर मछली मारने वालों पर पूँजीपतियों का कब्जा है। आम मछुआरे तो इससे बहुत दूर हैं। न सरकार द्वारा उन्हें कोई सुविधा दी जाती है न ही कोई और सहायता, न इनके पास ट्रालर है न कोई उच्च तकनीक, न ही मछलियों को सुरक्षित रखने का कोई कारगर उपाय। मछुआरों की इस जहालत को उपन्यास में एक गहरी सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया गया है उपन्यास मछुआरों की विवशता का यथार्थ प्रस्तुत करता है- "हम गरीब मछुआरों के पास न ट्रालर है, न ज्ञान, न संसाधन, मछलियाँ पाना हमारे लिए जुआ है। मिल भी गई तो प्रिजर्व नहीं कर सकते हम। सो मजबूरन जल्दी जल्दी औने पौने दाम में ट्रालर वाले बड़े व्यवसाइयों को बेच लेने में ही बहदुरी है। ट्रालर या मिनी ट्रालर तो दूर, हमारे लिए तो सोना बोट भी सपना है।"[5]

जिनके खिलाफ तट के मछुआरे लामबंद हो रहे हैं, आंदोलन कर रहे हैं। जिसका यथार्थ इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है- "गुजरात से लेकर बंगाल तक के मछुआरे जो आंदोलन कर रहे हैं ट्रालर वालों,

प्रोसेसिंग सेंटर वालों और दूसरी ज़्यादतियों के खिलाफ, उसे ही संयोजित करती रही। सागर तट का सारा अधिकार ही छीनने वाला है"[6] 'बेला' के इस कथन से उन मछुआरों की जिंदगी को समझा जा सकता है। उपन्यासकर ने एक मछुआरे की बहादुर बेटी के यथार्थ को दिखाया है, जिसके माँ- बाप समुद्र में समाहित हो गए थे। इस तरह इस समाज की गहरी त्रासदी को इस उपन्यास के मध्याम से देखा जा सकता है ।

संदर्भ :

1. रह गईं दिशाएँ इसी पार 137
2. रह गईं दिशाएँ इसी पार 195
3. वही 195
4. वही 187
5. रह गईं दिशाएँ इसी पार 193
6. रह गईं दिशाएँ इसी पार 191